ISSN: 2349-7637 (Online)
Volume-1, Issue-3, October 2014
RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal
Research Paper
Available online at: www.rhimrj.com

हिंदू-संस्कृति और स्वाधीनता

Dr. Rakesh R. Patel
Associate Professor,
Children's University,
Gandhinagar, Gujarat, India
E-mail: rrpatel_1970@yahoo.in

आजका स्वाधिन और विकासशील भारत वास्तवमें अनेको बार गिरकर उठता रहा है। विचारशील पुरुषोका चिंतन और कर्मशीलो कर्मयोग मिलकर संस्कृति पनपती है। संस्कृतिका वृक्ष अनेक लोकोके बलिदान का सुफल है। गुलामिके बार स्वतंत्रता मिल तो गई, मगर अभीभी सांस्कृति रीति से कई लोग अपने आपको कुछ अलग समजन है। भारतीय संस्कृति को दूसरे ही नमस्कार करनेवालेभी बहोत लोग है। मगर संस्कृति हमारी माता है। और माता हंमेशा अपने संतानका भला ही चाहती है।

सिन्दुनदीके तट-प्रदेशमें फैली हुई एक विशिष्ट सभ्यताकी धारा प्रवाहित हुई थी तथा वही सभ्यता क्रमशः समस्त भारतमें फैल गयी, यह अनेकों वेद-मन्त्रों तथा मनु प्रभृति धर्मशास्त्रोंसे ज्ञात होता है। * सिन्दु, सरस्वती, दृषद्वती प्रभृति कुछ नद-नदियोंके सन्निहित बहनेवाली धाराओंसे प्लावित उत्तरभारतके भूखण्डमें आर्य-सज्यता या हिंदू-संस्कृतिकी आदि जन्मभूमि है, यह बहुतोंका मत है। * *

बादमें कालमें बाहरसे विदेशी जातियोंने भारतमें प्रवेश किया तथा सिन्दुनदके किनारेके प्रदेशोंपर आक्रमण करनेमें उनका जिस जातिके साथ संघर्ष हुआ, देशके नामके अनुसार उसी जातिको उन्होंने 'सिन्धु' कहकर पुकारा। सम्भवतः आक्रमणकारी लोग सेमेटिक जातिके थे, इसी कारण उनके उच्चारण-वैकम्यके कारण 'सिन्धु' 'हिंदू' रूपमें परिणत हो गया। मेरुतन्त्रमें 'हिंदू' शब्दकी व्युत्पत्ति दूसरे प्रकार दी गयी है, तथापि अन्य किसी शास्त्र-ग्रन्थमें 'हिंदू' शब्दका उल्लेख न होने तथा मेरुतन्त्रमें लण्डन नगरका 'लण्ड्र' प्रभृति शब्दोंके द्वारा उल्लेख होनेके कारण इसकी प्रामाणिकताके विषयमें सन्देहको पर्याप्त अवकाश है; परंतु 'हिंदू' शब्दका व्यवहार इतना व्यापक हो गया है कि इसे माने बिना काम नहीं चल सकता। इन बातोंकी आलोचनाका प्रयोजन यही है कि किसीको यह भ्रम न हो जाय कि 'हिंदू' शब्दकी उत्पत्तिके साथ हिंदू-संस्कृति समकालीन है; बल्कि इस शब्दके उत्पन्न होनेके बहुत पहले ही हिंदू-संस्कृतिका पूर्ण विकास हो गया था, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है।

१. महापुरुषो के प्रयत्न : हिंदू-संस्कृतिका काल-निर्णय करनेके लिये बहुतेरे मनस्वी पुरुषोंने बहुत परिश्रम किया है। मनस्वी बालगङ्गाधर तिलक, हार्मैन जेकोबि, मैक्समूलर, मैक्डॉनेल, विल्सन, वेबर प्रभृति प्राच्य विद्याविशारदोंका नाम इस विषयमें विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। परंतु खेदका विषय यह है कि इनमेंसे किसी भी मतका दूसरेके साथ एक्य नहीं है। सभी विशेषज्ञ हैं, सभी तर्क और युक्ति उपस्थित करते हैं; परंतु इनके मतोंमें इतनी विभिन्नता है कि किसीके मतको स्वीकार करनेकी इच्छा नहीं होती। पचीस हजार, आठ हजार, छः हजार, चार हजार और अन्ततः तीन हजार वर्ष पूर्व हिंदु-संस्कृतिका आविर्भाव-काल विभिन्न विद्वानोंके मतसे है। कुछ वर्ष पूर्व सिन्धुनदके तट-भूमिस्थ प्रदेशमें 'मोहन-जो-दड़ो' तथा 'हरप्पा'के खण्डहरोंका अन्वेषण हुआ है। इस अन्वेषणके बाद भारतीय इतिहासमें बहुत बड़े परिवर्तनकी सम्भावना दीख पड़ती है। यह ध्वंसावशेष छः हजारसे भी अधिक पूर्वकी किसी सम्यताका निदर्शन करता

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved
ISSN: 2349-7637 (Online)

है। इसे प्रायः सभी मतके लोग स्वीकार करते हैं। आर्य-सम्यता अथवा हिंदू-संस्कृतिके आविर्भावके विषयमें पाश्चात्य पण्डितोंमें अधिकांशका मत चार हजार वर्षसे अधिक पहले नहीं जाता। इस ध्वंसावशेषके समान जीवन्त प्रमाण प्राप्त हो जानेपर उनके मतका खण्डन सम्भव हो गया है। अन्तमें इस स्थानकी अनुसन्धान-समितिके परिचालकके रूपमें सर जॉन मार्शलकी नियुक्ति हुई। उन्होंने अपने लिखित विवरणमें यह मत प्रकट किया कि 'यद्यपि वर्तमान हिंदू-सम्यताके साथ उपर्युक्त ध्वंसावशेषका निदर्शन अनेकाशमें मिलता-जुलता है, जिसका कारण यह है कि वर्तमान हिंदू-संस्कृति अनार्य-सम्यताके साथ मिश्रित हो गयी है, तथापि यह ध्वंसावशेष प्राग्वैदिक युगकी अनार्य सम्यताका निदर्शन है।' यों युक्ति देकर उन्होंने पूर्वप्रकाशित भारतीय इतिहासकी मर्यादाकी रक्षा करनेकी चेष्टा की है।

इस प्रसङ्गमें यह उल्लेख किया जा सकता है कि कलकत्ता विश्वविद्यालयके अध्यापक डों. बेनीमाधव वरुआ ए. ने इस विषयमें मनोयोगपूर्वक गवेषण करके एक नवीन तथ्यका पता लगाया है; वह तथ्य यह है कि उपर्युक्त ध्वंसावशेषके चित्र-संग्रहमें एक ऐसा चित्र मिला है, जिसमें एक वृक्षकी शाखापर दो पक्षी बैठे हैं। एकके मुखके पास कुछ फल है और दूसरेके मुखके निकट कोई फल नहीं है। इस चित्रकी ओर उन्होंने विद्वानोंकी दृष्टि आकर्षित की है और अनुरोध किया है कि इसका मिलान ऋग्वेदके इस मन्त्रके अर्थके साथ करें —

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

(ऋ. म. १ सू. १६४)

'सख्य और सायुज्ययुक्त दो पक्षी एक ही वृक्षका आश्रय लेकर बैठे है; उनमें एक ~~तो स्~~वादु अश्वत्थ-फलको भक्षण करता है और दूसरा बिना कुछ खाये साक्षिरूपसे अवस्थित है।' इस मन्त्रमें जीव दो पक्षियोंके रूपमें वर्णत है। यह रूपक-चित्र मोहन-जो-दड़ोमें मिट्टीके साँचेमें गढ़ा हुआ निकला है, उसीका आलोक-चित्र मोहन-जो-दड़ोके विवरणमें है।

श्मशानका आलोक-चित्र भी ध्यान देने योग्य है। वर्तमान हिंदू-संस्कृतिके मतसे अन्त्येष्टि-क्रिया जिस प्रकार अनुष्ठित होती है, मोहन-जो-दड़ोके ध्वंसावशेषमें भी उसी प्रकारके चित्र पाये गये हैं। एक घड़ा, अधजली लकड़ी, चिता-भस्म आदि चित्रमें दिखलाये गये हैं। शबका अग्निसंस्कार करना एक वैदिक आचार है। ऋग्वदके दशम मण्डल १५ । १६ सूक्तोंमें, अग्नि ही मृत पुरुषको पितृलोकमें ले जाती है, यह वर्णित है। परंतु असुर (अनार्य लोगों) की संस्कृतिमें मृत देह वसन-आभूषणसे सजायी जाती है तथा वही उसका शव-संस्कार होता है, यह छान्दोग्योपनिषद् ८ प्रप्राठक, ८ खण्डमें स्पष्ट उल्लिखित है। रामायणमें विराध राक्षस (अनार्य) के अनुरोधसे ही उसकी मृत्युके बाद उसके मृतदेहको गर्तमें डाल दिया गया था और यही है मृत राक्षसजातिका चिरन्तन धर्म। (अरण्यकाण्ड, चतुर्थ सर्ग)

२. हमारी संस्कृति : अन्ततः इन दो चित्रोंके दृष्टान्तसे मोहन-जो-दड़ो और हरप्पामें वैदिक संस्कृतिका प्रभाव विद्यामान होनेकी सूचना मिलती है। अतएव यह प्रमाणित होता है कि उपर्युक्त ध्वंसावशेष प्राग्-वैदिक युगका निदर्शन नहीं है।

हिंदू-संस्कृतिके प्राथमिक काल-निरूपणके सम्बन्धमें चाहे कितना ही सन्देह और वैमत्य क्यों न हो, यह तो निर्विवाद है कि वेदोंसे ही हिंदू-संस्कृतिका प्राकट्य और प्रसार हुआ है। पाश्चात्य जगत्के किसी-किसी विद्वानने ऋग्वेदको सर्वपेक्षा प्राचीन धर्मग्रन्थ माना है, * परंतु उन्होंने भी काल-निर्णयके लिये कोई प्रयास नहीं किया।

वैदिक भावराशि हिंदू-संस्कृतिका मूल है। धर्मसूत्र, स्मृति, पुराण, तन्त्र-सभी वेदकी छायाको लेकर धन्य-धन्य हो रहे हैं तथा ये समस्त ग्रन्थ हिंदू-संस्कृतिके काण्ड, पत्र और फल-फूल हैं।

नये-नये वैज्ञानिक आविष्कार विश्वके निवासियोंके मनको विस्मित कर रहे है। कहाँ तो बड़ी-बड़ी तोपें, सबमैरिन, वायुयान, जन-पद-ध्वंसकारी एटम बम-और कहाँ हिंदू-संस्कृतिकी नीरव साधना, निष्पन्द गति और शान्तिमय प्रकृति! यदि आज भारतको बाध्य होकर विज्ञानके पीछे ही दौड़ना पड़े, यन्त्र-शिल्पादिके लिये पाश्चात्त्योंका

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved
ISSN: 2349-7637 (Online)

ही अनुकरण करना पड़े, परानुग्रहके द्वारा प्राप्त चावल, गेहूँ, औषधादिके द्वारा ही जीवन धारण करना पड़े, पाश्चात्य सभ्यताके अनुसरणमे अपनी संस्कृतिकी तिलाञ्जलि देकर हिंदू-कोड० स्वातन्त्र्यकी सार्थकता कहाँतक रक्षित होगी – यह विचारणीय है।

हिंदू-संस्कृतिके भीतर छिपा हुआ स्वाधीनताका आदर्श क्या है, यही आज विचारणीय है। स्वाधीन भारतमें भी किसी रूपमें हिंदू-संस्कृति अवशिष्ट रह गयी थी, इसका कारण यह है कि उसकी आन्तरिक स्वाधीनताके बीजको कोई भी नष्ट नहीं कर सका था। भारतकी मिट्टीमें इसकी अभिव्यक्ति दूसरे ही रूपसे हुई है। प्रथमत: स्वाधीनता दो प्रकारकी होती है-एक भौमिक (राष्ट्रीय), और दूसरी आत्मीक। यह दोनों प्रकारकी स्वाधीनता ही पूर्ण स्वाधीनता कहलाती है।

भूमिकी स्वाधीनता कालवश कभी-कभी विपर्ययको प्राप्त होती है। चिरकालतक समानरूपसे राष्ट्रकी स्वाधीनता अक्षुण्ण रहेगी, इस प्रकारका निश्चय प्रदान करनेकी क्षमता किसीमें नहीं। परंतु भूमिके पराधीन होनेपर भी आत्मिक स्वाधीनतामें विपर्यय नहीं होता, यदि उस भूमिके निवासी स्वेच्छापूर्वक अपने स्वरूपको परकीय भावोंके अधीन न बनायें। तबतक आत्मिक स्वाधीनताका ज्ञान बना रहता है, तबतक किसी भी देशके निवासी अपने आहार-विहार, आचार-व्यवहार, वेश-भूषा आदि समस्त विषयोंमें सचेत रहते हैं, अर्थात् इन विषयोंपर अपने देशकी संस्कृतिके अनुसार ही विचार करते हैं।

३. इतिहास के कुछ प्रसंग : भौमिक (राष्ट्रिय) स्वाधीनताका कुछ कालतक व्याघात भी हो तो आत्मिक स्वतन्त्रताके द्वारा उसे पुन: प्राप्त किया जा सकता है; परंतु आत्मिक स्वाधीनताका त्याग करनेपर राष्ट्रिय स्वाधीनता भी चली जाती है। फारस देशके प्राचीन अधिवासी किसी समय अग्निपूजक थे, और उनका धर्मग्रन्थ था 'जेन्दावस्ता'। जब अरबके मुसल्मानोंने इस देशको जीत लिया तो सहस्रों पारसी भारतमें आत्मरक्षाके लिये भाग आये। परंतु अवशिष्ट पारसीलोग अपनी आत्मिक स्वाधीनताको खोकर चिरकालके लिये विचेताके साथ मिल-जुल गये। आज भी भारतमें उसी प्राचीन पारसी जातिके अनेकों लोग आत्म-संस्कृतिकी रक्षा करके विपुल धन और सम्मानके अधिकारी हो रहे हैं।

अनेकों जातियोंने भारतपर आक्रमण किया है, भारतके भूखण्डपर अधिकार किया है तथा उन विजेताओंने अपनी-अपनी संस्कृतिके प्रसारके लिये अदम्य चेष्टा भी की है; परंतु हिंदू-संस्कृतिको आंशिकरूपसे विकृत करनेके सिवा वे इसको विलुप्त नहीं कर सके। संस्कृतिकी महिमासे, आत्मिक स्वाधीनताके बलसे भारतकी हिंदू-जाति अजेय बनी रही। अतएव इस स्वाधीनताका उषालोक देखनेका आज सौभाग्य प्राप्त हुआ। भगवान् मनु कहते हैं —

सर्वं परवशं दु:खं सर्वमात्ववशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदु:खयो: ।।

'जो कुछ पराधीन है, दु:खप्रद है और जो कुछ स्वाधीन है, वही सुखप्रद है। यही सुख-दु:खका संक्षिप्त लक्षण है, ऐसा जानना चाहिये।'

इससे स्पष्ट हो जाता है कि भौमिक और आत्मिक अर्थात् बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकारकी स्वाधीनताकी रक्षा होनी चाहिये।

जब सम्राट् अकबर आरूढ़ था, तब उसने दीने-इलाहीका प्रचारक मुस्लिम-धर्म-संस्कृतिके द्वारा हिंदू-संस्कृतिपर विजय प्राप्त करनेकी चेष्टा की थी। वह था नीतिज्ञ; मुसल्मानोंकी पुरातन रीति-एक हाथमें तलवार और दूसरे में कुरान लेकर धर्मप्रसारका वह पक्षपाती न था। वह कौशलपूर्वक मधुरताके द्वारा जनचित्तको आकर्षित करनेकी चेष्ठामें लगा रहा। उसका फल यह हुआ कि सर्व-साधारणके मुखसे 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' इस प्रकारके प्रशंसासूचक शब्द निकलने लगे; परंतु उसका वह कौशल भी हिंदू-संस्कृतिके सामने न चल सका। बल्कि किसी-किसी विषयमें स्वयं सम्राट् अकबर हिंदू-संस्कृतिका अनुकरण कर कूँड़ापंथी मुसल्मानोंके कोपका भाजन बना। हिंदू-संस्कृति मुसल्मानी भावोंसे दूर रहकर आत्मरक्षाके लिये भारतयासियोंको सचेत करती रही, बल्कि मुसल्मान भी हिंदू-संस्कृतिकी आबोहवामें पड़कर बहुत कुछ हिंदू-भावापन्न हो बैठे। * घर-घरमें सत्यपीर और

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved
ISSN: 2349-7637 (Online)

सत्यनारायणकी उपासना, गाँव-गाँवमें मानिक पीरके स्थानमें दूध चढ़ाना, पीरकी दरगाहमें हिंदू-मुसल्मानोंका धरना और मनौती, औलाबीबी तथा शीतलाकी पूजा, दोनों सम्प्रदायोंके घर-घरमें इस मूर्तिकी परिक्रमा इत्यादि चल पड़े। निराकारवादी मुसल्मान भी साकार अपासनामें धीरे-धीरे अग्रसर होने लगे, मानसिक पीरके स्थान मिट्टीके घोड़ेसे भर गये, औलाबीबीकी मूर्ति देखी गयी, स्थान-स्थानमें काली और दुर्गाकी पूजामें मुसल्मान अपनी स्थितिके अनुसार आर्थिक सहायता प्रदान करने लगे। यदि कुछ दिन और इसी प्रकार चलता तो हिंदू-संस्कृति मुसल्मानोंको अपनी सीमाके अंदर और भी खींच लाती। यह कृपाणके बलसे नहीं होता, धर्मान्तरकरणसे नहीं होता, यह होता आत्मिक संयोग-स्थापनके द्वारा सांस्कृतिक मिलनके पथसे। परंतु आज तो स्थिति ऐसी प्रतिक्रियात्मक हो गयी है कि हिंदू-संस्कृतिकी रक्षा भी कठिन हो चली है।

४. अंग्रेज शासन के सांस्कृतिक अवरोध : भारतमें शासनाधिकार प्राप्त करनेके बाद अंग्रेजोंको भी पहले मार्गमें बाधाओंका सामना करना पड़ा था – सिपाहियोंमें १८५७ ई. में जातीयता-बोध न होनेपर भी भारतीय संस्कृतिकी प्रेरणाने ही वैदेशिक शासनके प्रति विद्रोहकी भावना पैदा की थी। उस समय मुसल्मानोंके अत्याचारसे जर्जरित हिंदूलोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे; यही कारण था कि कुछ लोगोंने अंग्रेजोंका पक्ष ग्रहण किया और इसीसे अंग्रेज विजयी हुआ। *

इस विद्रोहके बाद ही १८५८ ई. में पहली नवम्बरको महारानी विक्टोरियाने जो घोषणापत्र प्रकाशित किया, उसमें बाध्य होकर यह वचन देना पडा कि हिंदू-संस्कृतिके विषयमें हस्तक्षेप नहीं किया जायगा। इस घोषणाके द्वारा हिंदू-जनसाधारणके चित्तमें सान्त्वना प्रदान करनेपर भी बुद्धिमान् अंग्रेज समझते थे कि हिंदू-संस्कृति हमको भारतमें बाहरही-बाहर रक्खेगी। दरवानके समान हम बाहरी शत्रुके आक्रमणसे भारतकी रक्षा करेंगे, परंतु भीतर हमारा प्रवेश न हो सकेगा। भीतर प्रवेश न करनेपर भारतका शासन और शोषण पूर्णरूपसे न हो सकेगा, अतएव अब एकमात्र उपाय रह गया है हिंदू-संस्कृतिमें परिवर्तन करना।

सिपाही-विद्रोहका धक्का खाकर अंग्रेज शासकवर्ग कुछ वर्षोंतक हिंदू-संस्कृतिको बड़े भयकी दृष्टिसे देखते रहे। मिशनरी लोगोंके ईसाई मतके प्रचारका भी समर्थन पहले उनसे नहीं हुआ; परंतु अन्तमें यही स्थिर हुआ कि यदि भारतको अधीन रखना है तो भारतको ईसाई बनानेके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। यह सुयोग प्राप्तकर मिशनरियोंने हिंदू-संस्कृतिके विरुद्ध विराट् प्रचार प्रारम्भ कर दिया। हिंदू-संस्कृतिके विषयमें कितनी ही कविताएँ रची गयी तथा हिंदू-संस्कृतिका विकृत चित्र बनाकर देश-विदेशमें प्रचारित किया गया।

ब्रिटिश राजत्वके समय १८३५ ई. में कलकत्ताके बन्दरगाहमें एक जहाज विलायती माल लेकर आया। वह जहाज नाना प्रकारकी लोभनीय वस्तुओंसे पूर्ण था। औषधसे लेकर सूईतक बहुतेरी व्यवहारयोग्य वस्तुएँ बिक्रीके लिये भारतमें भेजी गई थीं; परंतु आश्चर्यकी बात यह है कि एक पैसेकी भी कोई वस्तु यहाँ नहीं बिक सकी। उस समयकी हिंदू जनता समझती थी कि म्लेच्छदेशकी तैयार की हुई वस्तुएँ हिंदुओंके लिये अस्पृश्य हैं, अव्यवहार्य हैं। यह संस्कार इतना दृढ़ और प्रबल था कि बहुत प्रयत्न करनेपर भी विलायती माल भारतमें न चल सका, और उस जहाजको जैसे आया था वैसे वापस लौट जाना पड़ा। उस समयके सेक्रेटरी आफ् स्टेट (भारतमन्त्री) लार्ड मैकालेने इस बातको देखकर प्रतिज्ञा की थी कि भारतमें इम अब एक ऐसी जाति पैदा करेंगे, जिसका रंग और रक्त भारतीय रहेगा, परंतु शिक्षा, दीक्षा और रुचिमें वह अंग्रेज हो जायगी।

इसी प्रतिज्ञाकी पूर्तिके लिये लार्ड मैकालेने भारतमें अंग्रेजी शिक्षाकी नींव डाली, और उनके सङ्कल्पित कार्यने पूर्ण सफलता प्राप्त की। चाय, चुरुट, बिस्कुट, जमा हुआ दूध, औषध आदिसे लेकर विलासकी भाँति-भाँतिकी सामग्रियाँ आज विदेशोंसे आती हैं और करोडो-करोडो रुपये विदेश चले जाते हैं।

५. हिन्दू संस्कृति : हिंदू-संस्कृतिने एक दिन शिक्षा दी थी कि भारतकी मिट्टीमें उत्पन्न वस्तु ही पवित्र और उपकारी है। भारतके फल-फूल, भारतकी औषधि-लता, भारतके अन्न-वस्त्र-सभी पवित्र और सुन्दर हैं, अतएव

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved
ISSN: 2349-7637 (Online)

व्यवहारयोग्य हैं। प्राचीनकालमें चीन देशसे भारतमें वस्त्र आता था; परन्तु इस प्रकारकी उस समय व्यवस्था थी, जिससे उसका भी भारमें प्रसार न हो सका।

न स्यूतेन न दग्धेन पारक्येण विशेषता: ।
मूषिकोत्कीर्णजीर्णेन कर्म कुर्याद्विचक्षण: ॥

'सिले हुए, जले हुए, खास करके विदेशोंमें बने हुए वस्त्रके द्वारा, चूहेके कुतरे हुए अथवा पुराने वस्त्रके द्वारा बुद्धिमान् पुरुष वैध कर्मोंको न करे।'

महाभारतके वनपर्वमें पाण्डुराजाके मृतदेहके दाह करनेके समय, लिखा है कि, उनका शरीर शुल्क देशी वस्त्रद्वारा आच्छादित किया गया था। हिंदू-संस्कृतिके प्रति लक्ष्य रखनेपर ही समस्त विदेशी द्रव्य अमेध्य, अशुचि मानकर हिंदूके लिये अपने-आप ही वर्जनीय हो जाता है। यह दूसरोंके प्रति विद्वेषमूलक 'बायकाट' नहीं है, बल्कि स्वदेश-प्रेमका एक निदर्शन मात्र है। साथ ही, देशका धन देशमं ही रखकर अपनी स्वाधीनताकी रक्षा करनेका एक उपाय है।

हिंदी-संस्कृति भारतको यही शिक्षा देती है कि पर-मुखापेक्षी न होकर पूर्णत: अपने भावसे अपने पैरोंके बल भारतवर्ष जिससे संसारमें खड़ा रह सके, वही सर्वपेक्षा बड़ी स्वाधीनता है। हिमालयरूपी प्राचीन तथा समुद्ररूपी परिखाके द्वारा वेष्टित हो यह भारत जिस प्रकार भौगोलिक सत्तामें सब देशोंसे विच्छिन्न होकर एक वैशिष्ट्य धारण कर रहा है, उसी प्रकार इस भारतमें उत्पन्न शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति पृथ्वीके दूसरे भागोंकी अपेक्षा एक असाधारणता रखती हैं। वह असाधारणत्व कुछ अंशोमें विस्मृतिके आवरणसे छिप जानेपर भी अभी सर्वथा विलुप्त नहीं हुआ है। इसीलिये श्रीउडरफ साहबने कहा था कि 'भारत वैसी कोई भौगोलिक सत्ता नहीं है, और न उस प्रकारकी कोई जन-समष्टि है, जौ अचानक पृथ्वीके किसी अंशमें आकर पड़ गयी हो अथवा पृथ्वीके किसी प्रान्तमें पड़ी रह सकती हो। भारत ज्ञानका प्रतीक है।'

मैजिनीने कहा था कि ''स्वाधीनता-शब्दके वास्तविक अर्थका विचार न करके केवल 'स्वाधीनता' शब्दकी रट लगाना केवल पीड़ित क्रीत दासकी मनोवृत्तिका परिचायक होनेके सिवा और कुछ नहीं॥''*

अत्यन्त दु:खके साथ प्लेटोने कहा था कि 'जो मनुष्य अपने देशकी संस्कृतिके प्रति घृणा उत्पन्न करता है, उससे बढ़कर पापी दूसरा कोई नहीं; ऐसे मनुष्यका मर जाना ही श्रेयस्कर है।'**

एडमण्ड बर्क महोदयने कहा था कि 'स्वाधीनता एक भाव है, और दूसरे भावोंके समान यह भी प्रत्यक्षगम्य नहीं है। स्वाधीनताका ज्ञान बहुत कुछ अनुभवसिद्ध विषयोंके साथ जुड़ा रहता है, तथा प्रत्येक जाति अपनी कपितय प्रिय वस्तुओंकी धारणाको लेकर स्वाधीनताके रूपको गठित करती है, जिसकी पूर्णताके ऊपर सुखके मानदण्डकी कल्पना की जाती है।'***

सचमुच ही स्वाधीनताका कोई निर्दिष्ट स्वरूप नहीं है। इंग्लैंडकी स्वाधीनतासे जिस प्रकार 'अपने ऊपर टैक्स लगानेका अधिकार' (Self-taxation) प्रधानत: समझा जाता है, उसी प्रकार भारतमें स्वाधीनता कहनेसे मुख्यत: 'हिंदू-संस्कृतिकी रक्षा' ही समझी जाती है। सच पूछिये तो, राष्ट्र बड़ा है या संस्कृति, पार्थिव राज्य बड़ा है या मनोमय राज्य, भोग्य वस्तु बड़ी है या भोक्ता-यही संघर्ष आज संसारमें सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। भारतकी प्राचीन विचारधारामें संस्कृति बड़ी मानी जाती थी, मनोराज्यकी प्रधानता थी तथा भोक्ताका प्रभुत्व था। आधुनिक विचारमें राष्ट्र ही बड़ा हो या है। इन दोनों धाराओंकी तुलना करनेपर ज्ञात हो जायेगा कि भारतमें संस्कृतिकी प्रधानता होनेके ही कारण राष्ट्रके पराधीन होनेपर भी उसकी स्वाधीन होनेकी अभिलाषा नष्ट नहीं हो सकी; परंतु यदि राष्ट्र प्रधान होता तथा अधिकांश जनता संस्कृतिकी उपेक्षा करती, तो राष्ट्र-विपर्ययके साथ-साथ संस्कृतिका भी नाश अवश्यम्भावी हो उठता। तब भारतका जो कुछ अतीत गौरव तथा पूर्वपुरुषोंकी कीर्ति थी, सब विस्मृतिके अतल-तलमें डूब जाते। आज मुसल्मान अपने हृदयसे यह बात समझने लगे हैं कि राष्ट्रके साथ संस्कृतिको एक सूत्रमें बाँधकर मुस्लिम-संस्कृतिको प्रधान

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved
ISSN: 2349-7637 (Online)

स्थान देना पड़ेगा। इसी कारण उनके राष्ट्रका नाम 'पाकिस्तान' हुआ है, उनके राष्ट्रका शासन कुरानशरीफके आधारपर हो हुआ है, तथा उनके लिये स्वाधीनताका अर्थ हो गया है — 'मुस्लिम-संस्कृतिकी अबाध गति'।

आश्चर्यकी बात ह है कि मुस्लिम-संस्कृतिमें जगत्‌को प्रदान करने योग्य बहुत ही कम सम्पत्ति है; परंतु जो कुछ है, उसीका जय-डंका बजानेके लिये वे कटिबद्ध हैं और इधर हिंदू-संस्कृतिमें जो असीम रत्नभण्डार, समस्त जगत्‌के लिये लोभनीय सम्पद् विद्यमान है, उसकी आज उपेक्षा हो रही है। वेद, उपनिषद्, दर्शन, तन्त्र, राजनीति, साहित्य, भागवत, रामायण, महाभारत आदि अमूल्य ग्रन्थराशिमें कितने भाव, कितने ज्ञान-विज्ञान तथा कितने उपदेश निहित हैं, उनका वर्णन करना कठिन है; परंतु आज स्वाधीन भारतमें उनकी आलोचनाके लिये कोई सुयोग ही नहीं है!

६. हिन्दू संस्कृतिके पहले : यथार्थ तो यह है कि हिंदू-संस्कृति ही हिंदूके लिये परम प्रिय वस्तु है। इस संस्कृतिके ऊपर चाहे जितने आघात, चाहे जितने आक्रमण क्यों न हों, आज भी अधिकांश जनता इस संस्कृतिके प्रति अनुरक्त है। यह मनुयाज्ञवल्क्यसे लेकर धर्मव्याधपर्यन्त सबकी कीर्तिसे समृद्ध है। इस संस्कृतिकी आदिजननी अपौरुषेय वेदवाणी है। इस संस्कृतिके साथ स्वाधीनताका सम्बन्ध अच्छेद्य है, यह कहनेमें भी अत्युक्ति नहीं है। इसी संस्कृतिकी महिमामें स्वाधीनता प्रत्येक व्यक्ति, समाज और राष्ट्रमें प्रतिष्ठित थी।

वर्णाश्रम-धर्मका स्थान इस संस्कृतिमें केन्द्रीभूत हुआ था, और वह आज भी पूर्णतः उच्छिन्न नहीं हुआ है। आश्रम-धर्ममें वैयक्तिक स्वाधीनता, वर्णधर्ममें सामाजिक स्वाधीनता तथा वर्णाश्रमधर्मके यथायथ पालनमें राष्ट्रिय स्वाधीनताकी रक्षा होती थी। आश्रमधर्ममें चरम और पर स्वाधीनता चतुर्थ आश्रम अर्थात् संन्यासमें विकसित होती है। संसारकी और कोई भी जाति इस स्वाधीनताके स्वरूपका चिन्तन नहीं कर सकी है। जो स्वाधीन होगा, उसके लिये कोई भी बन्धन नहीं रहेगा। जो स्त्री-पुत्रके अधीन हैं, विषयके अधीन हैं, समाजके अधीन हैं, मन-इन्द्रियोंके अधीन हैं, शुभशुभ कर्मके अधीन हैं-वे स्वाधीन कैसे कहला सकते हैं ? जो काम-क्रोधादि शत्रुओंके अधीन हैं, अन्न-वस्त्रके अधीन हैं, विलास-वासनाके अधीन हैं, वे स्वाधीन कैसे हो सकते हैं ? वास्तविक संन्यासीके लिये वेष-भूषाकी आवश्यकता नहीं, भोजनके लिये बाध्यता नहीं, कामना-वासनाका बन्धन नहीं-इसकी अपेक्षा स्वाधीनताका श्रेष्ठ आदर्श और क्या हो सकता है ? जो सब प्रकारके बन्धनसे मुक्त हैं, वस्तुतः वे ही स्वतन्त्र हैं।

ब्रह्मचर्य-आश्रममें देह और मनका गठन, गृहस्थ-धर्ममें कतिपय कर्तव्योंका पालन और परम्परा या धाराकी रक्षा करना-ये सारी बातें नियम-तन्त्रके अधीन होनेके कारण इनके द्वारा मनुष्यकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियोंका विकास होता है। व्यक्ति-समूहसे ही समाज बनता है। व्यक्ति-समूह यदि नियमानुसार वर्तने लगें तो समाज स्वस्थ और सबल हो उठे। हिंदू-संस्कृति कभी यह शिक्षा नहीं देती कि स्वाधीनताका अर्थ अनधीनता है अर्थात् स्वेच्छाचारिता या कामाचार है। स्वेचछाचारिताके द्वारा कभी कोई भी महान् कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। संन्यासी सर्वबन्धनामुक्त होनेपर भी स्वेच्छाचारी नहीं हो सकते; उनके भी नियम हैं, संयम हैं। परंतु गृहस्थके समान वे नियमोंके अधीन नहीं हैं। नियम स्वभावतः उनका आश्रय लेते हैं। गृहस्थाश्रममें रहकर भगवत्-आराधना और पितृ-श्राद्धादि वैध कर्मोंके करते-करते चित्तमें जो सनासक्तिका भाव आता हैं, उसीसे वैयक्तिक स्वाधीनताका विकास संभव होता है। अतएव गृहस्थ-धर्मके लिये उपदेश देते हुए मनु कहते हैं —

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्।
यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवे यत्नतः।

(मनु. ४।१५९)

यद् यत् कर्म पराधीनं परप्रार्थनादिसाध्यं तत्तद् यत्नतो वर्जयेत्। यद् यत् स्वाधीनदेहव्यापारसाध्यं परमात्मग्रहादि तत्तद् यत्नतोऽनुतिष्ठेत्॥ (कुल्लूकभट्टकी टीका)

'जो-जो कर्म पराधीन अर्थात् दूसरोंकी प्रार्थनादिसे सिद्ध होते हैं, उन-उन कर्मोंको यत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये, और जो कार्य स्वाधीन हैं, दैहिक व्यापारद्वारा सिद्ध हो सकते हैं, उन परमात्मज्ञान प्रभृति कार्योंका यत्नपूर्वक

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved
ISSN: 2349-7637 (Online)

अनुष्ठान करना चाहिये ।'

इस प्रकार स्वातन्त्र्य–शिक्षाके द्वारा गृहस्थकी व्यक्तिगत प्रतिष्ठाके लिये पद–पदपर उपदेश दिये गये हैं । क्या संन्यासी और क्या गृहस्थ, सबके लिये कहा है कि 'जो सब भूतोंमें आत्माको देखते हैं तथा जिन्हें आत्मामें सब भूत उपलब्ध दीखते हैं, वही समदर्शी आत्मयाजी पुरुष स्वाराज्यको प्राप्त होता है।' स्वाराज्यप्राप्तिका अर्थ यह है कि वह परमात्माके समान स्वतन्त्र और स्वाधीन भावको प्राप्त होता है ।*

वर्णधर्ममें सामाजिक स्वातन्त्र्यके विकासके लिये सुविधा प्रदान की गयी थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र–प्रथमतः मनुष्य–जातिके इन चार प्राकृतिक विभागोंके द्वारा चार प्रधान एकाइयों (Units) की सृष्टि की गयी थी । जो कुछ ज्ञानसम्बन्धी कार्य था, वह सब ब्राह्मणोंके उत्तरदायित्वपर निर्भर था । राष्ट्रकी रक्षा, पालनादिका समस्त उत्तरदायित्व क्षत्रियके ऊपर था। धनका आगम और वृद्धि तथा वाणिज्यादि कर्म वैश्यके हाथमें थे। शिल्प और सेवाका उत्तरायित्व शूद्र जातिके ऊपर था । इनके बीचमें भी कितनी ही अवान्तर उपजातियोंका निर्माण कर श्रम–विभाग (Division of labour) के द्वारा विभिन्न जातियोंमें पारस्परिक प्रतियोगिता (Competition) का द्वार बंद कर दिया गया था। बल्कि समाजके विविध प्रयोजनोंकी सिद्धि तथा प्रत्येक उपजाति (Unit) का जीविकोपार्जन एक ही समय एक ही कर्मके द्वारा सम्पन्न हो जाता था। कोई तेली, जुलाहा या सूत्रधार अपने निजी व्यवसायका स्वयं स्वामी था। उसकी स्वतन्त्रतामें कोई बाधा डालनेवाला न था। स्वंय मनुष्य जितना अधिक परिश्रम और योग्य कार्य करता, उतना ही वह अपना तथा समाजका उपकार करता ।**

हिंदू–संस्कृतिमें प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक सम्प्रदायने इस प्रकार स्वाधीनताका उपभोग किया है, तथा आज भी किसी अंशमें कर रहा है। उसके साथ तुलना करनेपर वर्तमान रूसका नव–कल्पित सम्प्रदायवाद (Communism) म्लान हो जाता है। रूसके सम्प्रदायवादमें व्यक्तिगत स्वाधीनताके लिये स्थान नहीं है, तथा मुट्ठीभर व्यक्तियोंके द्वारा परिचालित स्टेटके अधीन शेष समस्त जनता दासके समान कार्य करनेके लिये बाध्य है । उनका व्यक्तित्व नष्ट हो रहै है। जबतक स्टेटके किसी प्रधान पदपर बैठनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं होता, तबतक व्यक्तिका मूल्य चने–चबैनेके समान ही रहेगा। सम्प्रदायवादका मूल–मन्त्र है–समभावमें धन–विभाग, धनी और दरिद्रके वैषम्यको दूर करना।

हिंदू–संस्कृतिमें वर्णाश्रमधर्मके द्वारा धनी–दरिद्रके वैषम्यको दूर करनेकी व्यवस्था भी पायी जाती है। समान वर्ण और समान कर्म करनेवालोंके बीच आदान–प्रदान, विवाहादि सम्बन्ध नियन्त्रित होनेके कारण एक ओर समस्त धनी और दूसरी ओर समस्त दरिद्रोंके दल नहीं हो सकते । एक ही सजातीय समाजमें धनी और दरिद्रका मिलना–जुलना होता है। धनियोंको माता–पिताके निधन, विवाह अथवा अन्यान्य संकटकालमें दरिद्रोंकी सहायता प्राप्त करनी पड़ती है; अतएव उनका गर्व खर्व हो ही जाता है । धनीलोग कहीं विलासी–व्यसनी न हो जायँ, इसके लिये पूजा–पार्वण, श्रद्धा और विवाहमें धनीका धन समाजके प्रत्येक स्तरमें वितरित हो जाय, इसकी सुव्यवस्था भी देखी जाती है। एक दिन युधिष्ठिरने नारदजीसे पूछा कि गृहस्थके धर्म क्या हैं ? नारदजीने उत्तर दिया —

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम ।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥

(श्रीमद्भा. ७ । १४ । ४)

'जितनेसे उदर–पूर्ति होती है, उतनेमें ही प्रत्येकका स्वत्व है। जो इससे अधिक सञ्चय करता जाता है, वह चोर और दण्डनीय है।' सम्प्रदायवाद (Communism) का चरम सिद्धान्त इसी एक श्लोकमें प्रकट कर दिया गया है।

हिंदू–संस्कृतिमें राष्ट्रके कल्याणकी आकाङ्क्षा कम नहीं थी। यजुर्वेदके अ० २२ मन्त्र २२ में एक प्रार्थना है– 'हे ब्रह्मन् ! हमारे राष्ट्रमें यज्ञ और अध्ययनशील ब्राह्मण उत्पन्न हों; शूर, शरक्षेपपटु, शत्रुभेदकारी, महारथी क्षत्रिय उत्पन्न हों। इस राष्ट्रमें दुग्धप्रदा धेनु, वहनशील वृषम, तथा शीघ्रगति अश्व उत्पन्न हों। इस राष्ट्रमें पुरन्ध्री (जिसके

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved
ISSN: 2349-7637 (Online)

पति-पुत्रादि जीवित हों) नारी तथा जयशील रथी उत्पन्न हों। इस यजमानके समा-शोभाकारी, वीर, सामर्थ्यवान् पुत्र हों; हमारे इस राष्ट्रमें पर्जन्य हमारे इच्छानुसार वृष्टि प्रदान करें, ओषधियाँ (अन्न) फलवती होकर परिपक्व हों तथा राष्ट्रके योग-क्षेमका वहन करें।'

अश्वमेध, राजसूय प्रभृति यज्ञ जिनका वर्णन वेदोंमें पाया जाता है, उनसे समस्त राष्ट्रके अभ्युदयकी सूचना मिलती है।

बहुतोंकी धारणा यह है कि 'स्वाधीनताका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये देश-प्रेम (Patriotism) को जानना और समझना आवश्यक है। पर प्राचीन हिंदू-संस्कृतिमें देश-प्रेमकी बात कहाँ सुनी जाती है?' कुछ लोग यह भी कहते हैं कि 'स्वाधीनता पञ्चम पुरुषार्थ है, जिसका पता प्राचीन ऋषियोंको न था। वे लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको ही लेकर सन्तुष्ट थे।'

वस्तुतः भारत जबतक आर्षप्रज्ञामें प्रतिष्ठित था, तबतक किसी प्रकारकी पराधीनताका प्रश्न ही नहीं उठा। तथापि भारत-भूमिके सम्बन्धमें जो उनकी श्रद्धा थी, वह अत्यन्त उन्नत 'देश-प्रेम'का स्वरूप था। विष्णुपुराणमें कहा है कि 'जो लोग भारतभूमिमें जन्म ग्रहण करते हैं, वे धन्य हैं। देवतालोग भी उनका कीर्तिगान करते हैं; क्योंकि भारत कर्मभूमि है - यहाँ जन्म ग्रहण करके ही स्वर्ग या अपवर्ग प्राप्त किया जाता है। देवताओंको भी अपवर्गकी प्राप्तिके लिये इस भारतमें ही आना पड़ेगा, अतएव भारतवासी स्वर्गके देवताओंकी अपेक्षा भी अधिक भाग्यशाली हैं।'

श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि 'यह भारत वैकुण्ठका प्राङ्गण है; यहाँ जो मानव जन्म ग्रहण करता है, वह कितना सौभाग्यशाली है! क्योंकि इससे उसे मुकुन्द-सेवा करनेका सुयोग प्राप्त होता है।'*

रामायणका यह प्रसिद्ध श्लोक है —

नेयं स्वर्णपुरी लङ्का रोचते मम लक्ष्मण।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥

श्रीरामचन्द्र लङ्कामें रावण-वधके बाद अयोध्यामें लौटनेके लिये व्याकुल हैं, अतएव आग्रहपूर्वक कहते हैं कि 'हे लक्ष्मण! यह स्वर्णपुरी लङ्का मुझे अच्छी नहीं लग रही है, क्योंकि जननी और जन्मभूमि स्वर्गसे भी बढ़कर है।'

इसीका अनुवाद-सा करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजीके श्रीरामचरितमानसमें लङ्का-विजय करके पुष्पक-विमानके द्वारा श्रीअयोध्या लौटते हुए भगवान् श्रीरामचन्द्र अयोध्याको देखकर सुग्रीव, विभीषण और अङ्गदादिसे कहते हैं —

सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा॥
जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। वेद पुरान बिरित जगु जाना॥
अवधपुरी सम प्रिय नहि सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि॥

इसके अतिरिक्त यह भारत-भूमि देवताके रूपमें वेदमें भी पूजित हुई है। 'वही स्नेहमयी माता है। सबको अपनी गोदमें स्थान देती है' — यह अनेकों मन्त्रोंमें आया है। यही मन्त्रार्थ गीता और सप्तशतीमें प्रकाशित हुआ है।

जिनकी देशमातृकाने हृदयपर इस प्रकार अधिकार किया था, वे स्वाधीनताके मूल्यको नहीं समझते थे — यह कहनेसे वक्ताकी मूर्खता ही प्रकट होती है। स्वाधीनता के द्वारा मनुष् सुखी होगा, केवल इसीलिये स्वाधीनताकी कामना होती है; अन्यथा स्वाधीनता प्राप्त करके भी यद देशवासी निरन्तर दुःख-कष्ट ही भोग करें तो उससे आन्तरिक असन्तोष और क्रमशः अशान्ति ही उत्पन्न होती है। मनुने सुख-दुःखके लक्षणमें बतलाया है कि 'जो कुछ पराधीन है, वही दुःखप्रद है तथा जो कुछ स्वाधीन है, वही सुखप्रद है।' इसका तात्पर्य यही है कि स्वाधीनताके नामपर यदि परमुखापेक्षिता और परकीय संस्कृतिका अनुकरण अथवा अपनी संस्कृतिका विसर्जन हो तो विदेशी शासनके स्थानमें

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved
ISSN: 2349-7637 (Online)

केवल देशी शासनका प्रतिष्ठित होना स्वाधीनताका आभासमात्र है, यथार्थ स्वाधीनता नहीं है; और ऐसी स्वाधीनतासे कभी सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

७. सांस्कृतिक स्थिती : आज भारतकी भूमिसे दूर खड़े होकर बृटिशलोग इस हिंदू–संस्कृतिके विनाशकी बाट देख रहे हैं। वृटिशलोग स्वयं जिस कार्यके करनेमें समर्थ नहीं हुए, आज भारतवासियोंके द्वारा वे उसी संस्कगृति–विनाशके लिये चेष्टा कर रहे हैं।

एक ईसाई मिशनरीने प्राय: २५ वर्ष भारतमें वास करनेके पश्चात् सन् १९१७ ई० में एक पुस्त लिखी थी। वह उस पुस्तकमें लिखते हैं कि 'बहुत दिनोंके बाद इंग्लैंडमें आकर पाश्चात्त्य धर्मनीतिके जाननेकी चेष्टा करके मुझे आश्चर्य हो रहा है कि जर्मनी, अमेरिका, यहाँतक कि इंग्लैंडके भी धर्म–जगत्‌में हिंदूधर्म और दर्शनशास्त्रका प्रभाव बढ़ता जा रहा है। इसका विनाशक प्रभाव इतनी दूर पहुँच गया है कि उसको समझानेके लिये मेरी अपेक्षा कई गुना अधिक बुद्धिमान् और विचक्षण लेखककी आवश्यकता है। इसका वर्तमान कालमें प्रभाव न होनेपर भी भविष्यमें जान पड़ता है कि यह ईसाई–मतका मूलोच्छेद कर डालेगा। अतएव इसका प्रतिरोध करना बहुत ही आवश्यक है।'*

महात्मा गांधीकी अहिंसानीतिको कार्यान्वित करनेके लिये चो चेष्टाएँ हो रही हैं, उनमें यथार्थ साधना–आत्मोन्नति या हिंदू–संस्कृतिविषयक शिक्षाकी कोई व्यवस्था नहीं दीख पड़ती। हिंदू–संस्कॉतिको विज्ञानके चरणतले लुण्ठित करनेकी मनोवृत्ति क्रमश: बढ़ती जा रही है। इसका फल यदी होगा कि भारतकी स्वाधीनता बाह्यरूपसे कुछ कालतक रहते हुए भी अन्तरकी पराधीनता क्रमश: जड़ पकड़ती जायगी और अन्तमें स्वाधीनताके नामपर स्वेच्छा–चारिताका राज्य हो जायगा। प्रत्येक प्रान्त–उपप्रान्तमें लोभ और असंयम बढ़ेगा, और उसके साथ क्रमश: अन्तर्विप्लव अनिवार्य हो जायगा और अपनी स्वाधीनता विपद्‌में पड़ जायगी।

आज आवश्यकता यह है कि विज्ञानके ऊपर मानवताको प्रतिष्ठित करना, विज्ञानके ऊपर धर्मका स्थान निश्चित करना, विज्ञानको नियन्त्रित करनेके लिये लोगोंको परमार्थके अनुसन्धानमें लगाना। आज भारतका यही कर्तव्य है।

इस युगमें विज्ञान सर्वथा हेय नहीं माना जा सकता, यह सत्य है। पारस्परिक संघर्षसे बचनेके उद्देश्य भारतमें विज्ञानकौशल प्राप्त करनेके लिये शिक्षाकी आवश्यकता है, इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है। परंतु इसीके साथ–साथ मध्यमार्गको ढूँढ़ना होगा। एक ऐसी योजना बनानी होगी, जिसके द्वारा विज्ञानकी अनिष्टकारिता और इष्टकारिताकी तुलनात्मक समालोचना निष्पक्षभावसे की जाय तथा विज्ञानके विनाशात्मक प्रभावको नष्ट करनेके लिये शान्ति और सन्तोषके आदर्शको विश्वके सामने उपस्थित किया जाय।? यइस प्रकारके आदर्शका प्रचार और प्रसार होनेसे हिंदू–संस्कृतिका अत्युच्च आसन विश्वके दरबारमें प्रतिष्ठित होगा और परस्पर विवादमें लीन पाश्चात्त्य जातियाँ आत्मविनाशरूप रोगकी ओषधिके रूपमें इस आदर्शको ग्रहण करनेके लिये बाध्य होंगी। यदि किसी दिन इस प्रकारका विश्व–कल्याण प्रतिष्ठित हो सका, तभी भारतकी स्वाधीनता सार्थक होगी।

संदर्भ

* दृष्टान्तरूपमें ऋग्वेद १० मण्डल ७५ सूक्त देखिये। इस प्रकारके बहुतसे मन्त्र है। मनुके द्वितीय अध्याय १७, १८, १९, २०, २१, २२ श्लोकमें ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पाश्चाल, शूरसेन, मध्यदेश तथा आर्यावर्तपर्यन्त क्रमिक सम्यताका विस्तार दिखलाते हुए नामोल्लेख किया गया है। 'संस्कृति' शब्दका आधुनिक अर्थ प्राचीन कालमें आचार–सदाचार, चरित्र प्रभृति शब्दोंके द्वारा प्रकट किया जाता था। वर्तमानमें प्रचलित सम्यता, कृष्टि, भावधारा—ये सारे शब्द भी आजकलके कल्पित culture शब्दके अनुवादमात्र हैं।

** मैक्समूलर साहब अपनी 'Vedic Index' नामक पुस्तककी भूमिकामें लिखते है — Here the home of the Indo-Aryans of the earliest periold-that of the Rgveda is the terriory drained by the Indus river system, x x x corresponding roughly to the North-west Frontier Province of the Punjab of the present day. x x x But the home of the fully developed culture of the Brahmanas lay in the territory extending in a south-easterly direction x x betweast the conflueuce of Saraswati and Dreadvati in the west and thal of the Sadanira and Ganges on the can etc. (vide page XIV)

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved
ISSN: 2349-7637 (Online)

* The Rgvedas are the Hindu sacred writings which are probably the oldest literary compositions inthe world. (Wall's 'sex and Sex-worship" page 8)

* The Mohamedans have themselves become Hinduized and have been brought into the meshes of Caste. (Rev. Sherring in "Castes and Tribea of India")

* We were only able to vanquish a sepoy army by the aid of gallant native troops, who remained faithful to the salt. (The Duke of Argyll)

* Merely to spout liberty without reflecting what it is intended the word should imply, is the instinct of the oppressed slave and no more.

** A man who brings into contempt the creed of his country is the deepest of the eriminals; he deserves death and nothing eles.

*** Abstract liberty, like other abstractions, is not to be found. Liberty inheres in some sensible object and every nation has formed to itself some favourite point, which by way of eminence becomes the criterion of their happiness. (Conciliation with America)

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति॥
(मनु० १२।९१)

X X X स्वे राज्ये भवं स्वाराज्यम् परमात्मवत् स्वतन्त्रः सम्पद्यते। (मेधातिथि-टीका)

यहाँ 'स्वाराज्य' स्वर्गराज्य-बोधक नहीं है, परंतु अविनश्वर स्वराज्यका बोषक है।

** मनुसहितामें यन्त्रशिल्पको निन्दित कहा गया है और गृहशिल्पकी प्रशंसा की गयी है। पापोंकी सूचीमें 'महायन्त्र-प्रवर्तनम्' ('बड़ी-बड़ी मशीनोंका चलाना') भी एक पाप माना गया है। (अ० ११)

* गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे। स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥
(विष्णुपुराण २। ३। २४)

अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः॥ (श्रीमद्भा० ५। १९। २१)

* उड्रूफ-प्रणीत 'क्या भारत सभ्य है?' ग्रन्थसे उद्धृत।

(लेखक-पं. श्रीजीवजी न्यायतीर्थ, एम.ए.)

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved
ISSN: 2349-7637 (Online)